पी.एच.डी. उपाधि हेतु मेंरे शोध प्रबन्ध का शीर्षक **- 'महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन'** है।

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ दीपक भी होता है। इसी नाते साहित्यकार का उत्तरदायित्व न केवल युगीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन करना होता है, अपितु इन विकृतियों की जड़े खोदकर कुछ ऐसे ठोस समाधानों व उपायों की तलाश करना भी होता है, जो एक सामान्य मानव का पथ प्रदर्शक बनें। तभी हम साहित्य को समाज के लिए कल्याणकारी मान सकते हैं। पुरूष प्रधान समाज में माँ, पत्नी, बहन, बेटी के रूप में स्त्री आसरा पाए हुए है। स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व पुरूष प्रधान समाज में नहीं है। हजारों सालों से वह पुरूष के साए में अपना जीवन व्यतीत कर रही है। उसकी अपनी व्यक्तिगत कोई भी पहचान नहीं है। स्त्री को शिक्षा दी जाती है कि वह शादी से पहले पिता के आश्रय में शादी के बाद पति के आश्रय में तथा बुढापे में अपने पुत्रों के आश्रय में रहेगी। अर्थात् चाहे स्त्री की कैसी भी स्थिति हो या कोई भी उम्र हो हर परिस्थिति के अधीन ही रहना है। इसके साथ-साथ स्त्री के रहन-सहन, वेश-भूषा, शिक्षा-दीक्षा आदि पर पूर्ण रूप से पुरूष का नियंत्रण है। वर्तमान समय में पुरूष प्रधान समाज की मानसिकता को बदलना एक जटिल कार्य है। पुरूषवादी समाज में स्त्री को एक वस्तु के तौर पर देखा जाता है। स्त्री के इन दुर्गम रास्तों में पुरूष ने कभी उसे अपने से आगे नहीं बढ़ने दिया। इन राहों से कुछ स्त्रियां पढ-लिख कर आगे बढ़ी और अनेक श्रेत्रों में अपना कोशल दिखाया। कुछ स्त्रियां साहित्यकार भी बनी जिनमें से कुछ स्त्रियां ही निर्भीक रचनाकार बनकर सामने आई| जिन्होंने अपने जीवन के संघर्ष, पीड़ा, अन्याय, शोषण के साथ-साथ स्त्री अस्तित्व, स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री अधिकार को आत्मकथा साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त कर एक नई मिसाल कायम करते हुए स्त्री विमर्श, स्त्री प्रतिशोध के एक से बढ़ कर एक उदाहरण प्रस्तुत किए। वास्तव में यह सभी महिला आत्मकथाएं स्त्री शोषण, स्त्री अन्याय, स्त्री संघर्ष के विरूद्ध प्रतिशोध का ज्वलंत दस्तावेज है।

प्रस्तुत शोध प्रबध को शोध कार्य की सुविधा की दृष्टि से पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्यायः महिला आत्मकथाओं का अर्थ एवं स्वरूप ।

1.1 आत्मकथा का अर्थ एवं स्वरूप ।

1.2 आत्मकथा की अवधारणा ।

1.3 आत्मकथा की उपादेयता एवं प्रासंगिकता ।

1.4 महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का उद्‌भव एवं विकास ।

1.5 बहुचर्चित महिला आत्मकथा: विहंगम दृष्टि ।

द्‌वितीय अध्यायः महिला लेखिकाओं की आत्मकथा का परिचय/विश्लेषण ।

2.1 स्घूरना देवी - अबलाओं का इंसाफ ।

2.2 प्रतिभा अग्रवाल - दस्तक जिन्दगी की ।

2.3 कुसुम अंचल - जो कहा नहीं गया ।

2.4 कृष्णा अग्निहोत्री - लगता नहीं है दिल मेंरा ।

2.5 शिला झुनझुनवाला - कुछ कहीं कुछ अनकहीं ।

2.6 मैत्रयी पुष्पा - कस्तुरी कुण्डल बसै ।

2.7 बेबी हालदार - आलो आँधरि ।

2.8 रमणिका गुप्ता - हादसे ।

2.9 रमणिका गुप्ता - आपहुदरी ।

2.10 मन्नु भंडारी - एक कहानी यह भी ।

2.11 प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या ।

2.12 कौशल्य बैसंती - दोहरा अभिशाप ।

2.13 चन्द्रकिरन सोनरकेसा - पिंजरे की मैना ।

तृतीय अध्यायः महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन ।

3.1 सामाजिक अध्ययन ।

3.1.1 परिभाषा एवं स्वरूप।

3.1.2 ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के संघर्ष ।

3.1.3 पितृसत्तात्मक व्यवस्था से टकराव ।

3.1.4 महिलाओं पर पुरूष का वर्चस्व ।

3.2 सांस्कृतिक अध्ययन ।

3.2.1 परिभाषा, अर्थ एवं स्वरूप ।

3.2.2 संस्कृति और संस्कार ।

3.2.3 भारतीय संस्कृति की विशेषताएं ।

खान-पान ।

रहन-सहन ।

रीति-रिवाज ।

वेश-भूषा ।

धार्मिक त्यौहार ।

चतुर्थ अध्याय: **महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं में निरूपित समस्याएं ।**

4.1 सामाजिक समस्याएं ।

4.2 आर्थिक समस्याएं ।

4.3 धार्मिक समस्याएं ।

4.4 राजनीतिक समस्याएं ।

4.5 साम्प्रदायिक समस्याएं ।

4.6 सांस्कृतिक समस्याएं ।

पंचम अध्यायः **महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं की भाषा एवं शिल्प ।**

5.1 भाषा का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा ।

5.2 भाषा शैली (आत्मकथात्मक) ।

5.3 शिल्प का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप ।

5.4 लाक्षणिक भाषा का प्रयोग: मुहावरों का प्रयोग ।

5.5 भाषा में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग ।

5.6 बिम्ब योजना ।

5.7 प्रतीक योजना ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय का शीर्षक - **महिला आत्मकथाओं का अर्थ एवं स्वरूप** है जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

1.1 आत्मकथा का अर्थ एवं स्वरूप

इसके पश्चात् आत्मकथा के स्वरूप को बताया है, इसमें बीसवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी तक की आत्मकथाओं के बदलते स्वरूप को भी स्थान दिया है। आत्मकथा का अर्थ होता है - स्वयं द्वारा स्वयं के जीवन पर लिखी कथा। यह शब्द दो शब्दो के संयोग से बना है - 'आत्मा' और 'कथा'। इन दोनों के काफी अर्थ है - आत्मा का अर्थ - अपना, स्वयं, निजी, आत्मा, मन, आपबीती, अनुभव आदि। कथा का अर्थ - गाथा, कहानी, जीवन का अनुभव, जीवन की कहानी आदि। इस प्रकार दोनों शब्दों के अर्थ जानने के बाद आत्मकथा का अर्थ - अपनी कहानी, स्वयं की कहानी, स्वयं के जीवन व अनुभव की कहानी।

1.2 आत्मकथा की अवधारणा

आगे आत्मकथा की अवधारणा को दर्शाया गया है। वर्तमान समय में आत्मकथा गद्य साहित्य की एक तेजी से लोकप्रिय होती विधा है। इसके पीछे कारण यह है कि मनुष्य आज स्वयं के जीवन में झांकने की बजाए दूसरे के जीवन में ताक-झांक ज्यादा रखता है। आत्मकथा के माध्यम से आत्मकथाकार अपने जीवन के सफर में घटने वाली घटनाओं के आधार पर अपने निजी पहलूओं का वर्णन करता है। आत्मकथा में सबसे ज्यादा ध्यान सत्य पर होता है अर्थात् आत्मकथा का आधार सत्य है। आत्मकथा की विधा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त सभी भाषाओं में मिलती है। अर्थात् जो व्यक्ति दुनिया के किसी भी कोने में रहता हो अगर वह आत्मकथा लिखना चाहता है तो वह अपनी मातृभाषा या अपने क्षेत्र की मानक भाषा में लिखेगा चाहे वह कोई भी भाषा हो। आत्मकथा में लेखक अपने प्रति तटस्थ भाव से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। इसका केन्द्र स्वयं आत्मकथाकार होता है। वह अपने अनछुए पहलुओं को पाठक के सामने रखने का सामर्थ्य रखता है।

1.3 आत्मकथा की उपादेयता एवं प्रासंगिकता

साहित्य की रचना की पीछे उनके उद्देश्य होते हैं। वैसे यह आवश्यक भी नहीं है कि प्रत्येक साहित्यिक रचना के पीछे कोई उद्देश्य ही हो। पाश्चात्य विद्वान 'कला को कला के लिए' कहकर साहित्य को उद्देश्यहीन करने की बात करने पर जोर देते हैं। किन्तु हमारा सनातन चिंतक जीवन के प्रत्येक पहलू को साहित्य और कला से जोड़ने की बात करता है। इसके के

कारण साहित्य को उपादेयता और प्रासंगिकता बनी रहती है। अगर साहित्य को मनोरंजन के उद्देश्य से देखा जाए तो साहित्य अपनी उपादेयता और प्रासंगिकता ही खो देगा। साहित्य में मुख्य रूप से पद्य और गद्य दो विधाएं है किन्तु गद्य के अंतर्गत अनेक विधाएं आती है। इस प्रकार पद्य और गद्य की विभिन्न विधाएं अपने अपने गढ से जीवन को प्रस्तुत करने का कार्य करती है। अगर जीवन से जुडाव की बात की जाए तो सभी विधाओं में 'आत्मकथा' से पहले आती है। आत्मकथा का सीधा सम्बन्ध जीवन के जुडाव से होता है। हमारे जीवन के लिए अनेक तत्वों की उपयोगिता होती है जिन्हें प्राप्त करने के लिए मनुष्य जीवन भी प्रयासरत रहता है। मनुष्य अपने जीवन की सार्थकता के अनुसार सम्मान, धन, बल आदि प्राप्त करने में लगा रहता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में इस बात का बहुत अच्छी प्रकार से मिलता है। महिला आत्मकथाकारों ने अपने साथ किए गए प्रत्येक स्तर के शोषण को उजागर करके पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ढोंग को सामने लाने का काम किया है। इसी आज आत्मकथा की उपादेयता और प्रासंगिकता बढ़ रही है।

1.4 महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का उद्भव एवं विकास

इसके पश्चात् हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं के उद्भव व विकास का वर्णन किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि पहले की आत्मकथाओं व वर्तमान की आत्मकथाओं में अंतर आया है। तथा स्त्रियों का अपने अधिकारों के प्रति सजगता को भी दिखाया गया है। हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' नाम से प्रकाशित है। इसके लेखक श्री बनारसीदास जैन है। यह आत्मकथा सन् 1641 ई. में लिखी गई थी। यह एक पद्यात्मक आत्मकथा है जिसमें कुल 675 पद सकंलित हैं। इस आत्मकथा का सर्वप्रथम संपादन श्री नाथूराम प्रेमी ने किया। तथा प्रकाशन पहली बार जुलाई 1943 ई. में 'हिंदी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई' से हुआ। हिंदी की पहली गद्य आत्मकथा भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द द्वारा 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' शीर्षक से 1876 ई. में लिखी गई। इस आत्मकथा का प्रथम बार प्रकाशन 'कवि वचन सुधा नामक मासिक पत्रिका में भाग-8 सन् 22 वैशाख कृष्ण 4,1932 सवंत् में हुआ। यह मात्र दो पृष्ठों में लिखी गई एक अपूर्ण आत्मकथा है

1.5 बहुचर्चित महिला आत्मकथा: विहंगम दृष्टि

इस अध्याय के अंत में बहुचर्चित महिला आत्मकथाओं पर एक विहंगम दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। "महिला आत्मकथा-साहित्य का सर्वप्रथम सूत्रपात भी बांग्ला भाषा में 'आमार जीबोन' नामक आत्मकथा से सन् 1876 ई. में हुआ। इसकी लेखिका रससुंदरी देवी है। इस लिखित आत्मकथा में उन्होनें स्त्री जीवन की अत्यन्त निजत्व आरै गोपनीय जिन्दगी की दास्तां को न केवल सार्वजनिक किया अपितु अपनी प्रतिरोधी चेतना द्वारा समय-समय पर ज़ाहिर भी

करती रही हैं। यह आत्मकथा स्त्री असमानता और अन्याय का कच्चा चिट्ठा खोलती है। यही साहस बांग्ला, मराठी इत्यादि अनेक भाषाओं के साथ-साथ हिंदी भाषा की अनेकों आत्मकथाओं में भी प्रतिबिम्बित हो रहा है। महिला आत्मकथाओ की दृष्टि से बांग्ला में रससुंदरी देवी की आत्मकथा के पश्चात् बिनोदिनी दासी (आमार कोथा, 1912 ई), देवी शरद सुंदरी (आत्मकोथा, 1913 ई.), निस्तारिणी देवी (सेकाले कोथा, 1913 ई.), प्रसन्नमयी देवी (पूर्वकोथा, 1917 ई.), अमिय बाला (अमियबाला की डायरी, 1929 ई.), सदुक्षिणा सेन (जीवन स्मृति-, 1932 ई.) इत्यादि उल्लेखनीय है।

बांग्ला भाषा के बाद मराठी भाषा में भी महिलाओं द्वारा अनेक आत्मकथाएँ लिखी गई जिनमें रमाबाई रानके (आमच्या आयुष्यांतीत कांही आठवणी-1910 ई.), अन्नपूर्णा बाई रानके (स्मृति तरंग-1931 ई.), लक्ष्मीबाई तिलक (स्मृतिचित्रे-1934 ई.), मीनाक्षी साने (जीवन नृत्य-1934 ई.), पार्वतीबाई आठवले (माझी कहानी-1936 ई.) इत्यादि प्रमुख है। इन सभी आत्मकथाओं में पुरुष प्रधान समाज से मुक्ति की छटपटाहट एवं असमानता की वेदना के स्वर उच्च स्वर में मुखरित हुए हैं।

हिंदी भाषा में प्रथम लिखित ज्ञात महिला आत्मकथा 'दुःखिनीबाला' द्वारा रचित 'सरलाः एक विधवा की आत्मजीवनी' है। यह आत्मकथा एक विधवा महिला की आत्मबयानी, पीड़ा, अन्याय को भोगते हुए अपराजेय की दर्दभरी दास्तान भी है, जिसमें पुरुष प्रधान समाज के प्रति विद्रोह भाव के साथ-साथ प्रतिरोध का तीखा स्वर भी शामिल है। 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका में जुलाई सन् 1915 से मार्च, 1916 तक के अंकों में 'आत्मजीवनी का धारावाहिक रूप' से प्रकाशन भी हुआ था।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ के द्वितीय अध्याय का शीर्षक **महिला लेखिकाओं की आत्मकथा का परिचय/विश्लेषण** है जिसमें महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का परिचय देने के साथ-साथ उनका विश्लेषण भी किया गया है। इस अध्याय में लेखिकाओं की आत्मकथाओं के अनुसार उन पर हुए सामाजिक अपमान, पारिवारिक असहयोग व पुरूष के सामने उसके दोयम दर्जे की स्थिति को साधारणीकरण रूप दिया गया है। इस अध्याय में यह भी दिखाया गया है कि जो स्त्री साहित्यकार होकर भी शोषण से मुक्त नहीं हो सकती। अपने अधिकारों को पा नहीं सकती तो एक सामान्य स्त्री की स्थिति समाज में कैसी होगी। इस अध्याय में महिला लेखिकाओं के व्यक्तिगत जीवन को भी दिखाया गया है।

2.1 स्घूरना देवी - अबलाओं का इंसाफ

2.2 प्रतिभा अग्रवाल - दस्तक जिन्दगी की

2.3 कुसुम अंचल - जो कहा नहीं गया

2.4 कृष्णा अग्निहोत्री - लगता नहीं है दिल मेंरा

2.5 शिला झुनझुनवाला - कुछ कहीं कुछ अनकहीं

2.6 मैत्रयी पुष्पा - कस्तुरी कुण्डल बसै

2.7 बेबी हालदार - आलो आँधरि

2.8 रमणिका गुप्ता - हादसे

2.9 रमणिका गुप्ता - आपहुदरी

2.10 मन्नु भंडारी - एक कहानी यह भी

2.11 प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या

2.12 कौशल्य बैसंती - दोहरा अभिशाप

2.13 चन्द्रकिरन सोनरकेसा - पिंजरे की मैना

प्रस्तुत शोध प्रबंध के तृतीय अध्याय का शीर्षक **महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन** है।

3.1 सामाजिक अध्ययन

3.1.1 परिभाषा एवं स्वरूप

इस अध्याय के आरम्भ में समाज की परिभाषा एवं उसके स्वरूप को दिखाया गया है। आम बोलचाल की भाषा में लोगों के समूह को समाज कहा जाता है। परन्तु समाज का अर्थ मनुष्यों का समूह नहीं अपितु संबंधों का जाल है। यह संबंध सामाजिक जीवन के हर एक पहलू में विस्तृत होने के कारण जटिल होता है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी के रूप में परिवार धार्मिक, समिति, किसी कार्यालय और राष्ट्र तथा इसी प्रकार अनेक समितियों का सदस्य हो सकता है। प्रत्येक सदस्यता का आधार एक विशेष प्रकार का संबंध है। इन्हीं संबंधों के विकास से सामाजिक व्यवस्था का विकास होता है।

3.1.2 ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के संघर्ष

इसके पश्चात् इस अध्याय में ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरी क्षेत्रों में महिला लेखिकाओं के संघर्षों को दिखाया गया है। जिनमें पाया कि गांव हो या शहर स्त्री के संघर्ष लगभग समान ही होते है।

3.1.3 पितृसत्तात्मक व्यवस्था से टकराव

आगे पितृसत्तात्मक व्यवस्था से स्त्री किस प्रकार टकराती है तथा वह अपना वजूद सुरक्षित रखती है। पितृसत्ता से टकराव क्यों और कैसे होता है इसको जानने से पहले हम पितृसत्ता के अर्थ एवं स्वरूप का जानना अनिवार्य है। आखिरकार ये पितृसत्ता क्या है जो सदैव से स्त्रियों को हाशिये पर धकेलती आ रही है। पितृसत्ता से आशय पितृ की सत्ता से है। पितृसत्ता शब्द दो शब्दों के मेंले से बना है - पितृ + सत्ता - पिता की सत्ता या शासन। जहाँ परिवार में सत्ता पिता के हाथों में होती है। घर के हर छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े निर्णय लेने का अधिकार पुरूष के पास होता है। पिता के बाद उसका बेटा घर में सत्ता संभालने का कार्य करता है। फिर बेटे का बेटा सत्ता संभालता निरन्तर यही क्रम चलता रहता है। और सत्ता एक पुरूष के हाथ से हस्तांतरित होकर दूसरे पुरूष के हाथ में चली जाती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि परिवार बाहर के सब प्रबंधन पर पुरूषों का ही वर्चस्व होता है यहां स्त्रियों के लिए कोई अधिकार नहीं है।

3.1.4 महिलाओं पर पुरूष का वर्चस्व

आदिकाल से ही महिलाओं पर पुरूष का वर्चस्व रहा है। अंतर इतना है कि किसी युग में कम और किसी में अधिक किंतु पिछले लगभग एक हजार वर्षों पर हम नजर दौडाते हैं तो पाते हैं कि स्त्री पर पुरूष का अधिकार किसी पशु मालिक के समान हो गया है जो उसे अपने फायदे के लिए प्रयोग करता है। इसी समय के दौरान महिलाओं संबंधी बुराईयाँ समाज में फैली जिनका दंश आज भी स्त्री झेल रही है। इस सभी समस्याओं में पुरूष ने बडी चालाकी से महिला को मानसिक रूप से अपंग बना दिया। जिस कार्य में उनका सबसे अधिक योगदान पितृसत्तात्मक व्यवस्था की विवाह संस्था ने किया। भारतीय विवाह संस्था में प्रमुख दोष यह है कि इसमें बराबरी जैसा रिश्ता नहीं होता क्योंकि यह असमानता पर आधारित ढांचा है। और प्रमुखतः गैर बराबरी की संस्था है जिसमें पुरूष सदैव हावी रहता है। कुछ महिला रचनाकारों ने परम्परागत तरीके से विवाह और कुछ ने प्रेम विवाह किया है। यह आवश्यक नहीं मां-बाप द्वारा तय की हुई शादी में लडकी को सुख प्राप्त हो। कृष्णा अग्निहोत्री को भी परम्परागत तरीके से विवाह किया। कृष्णा अग्निहोत्री का वैवाहिक जीवन दुखों अपमान से भरा हुआ। इसका कारण लेखिका के पति है जो बात को पूरी तरह समझने की बजाय तथा स्वयं अपनी गलती पर पश्चाताप करने की अपेक्षा पत्नी को डाटना जरूरी समझते है।

3.2 सांस्कृतिक अध्ययन

इस अध्याय में आगे संस्कृति का अर्थ एवं परिभाषा दी गई है संस्कृति संसार की आध-भाषा संस्कृत का अपना ही शब्द है जो सम् उपसर्ग और कृ धातु से 'क्तिन' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। साधारण शब्दों में यह 'संस्कार' का समानार्थ है। संस्कृति स्वयं में बड़ी व्यापक है। यद्यपि उसे जाति और राष्ट्र की सीमा में बाधा जा सकता है। परन्तु व्यावहारिक एवं वैचारिक रूप में यह किसी सीमा में बंधी हुई नहीं है। यह समुद्र की स्वछंद तरंगों की तरह तरंगित होती रहती है और निरंतर गतिशील है। समय के साथ इसके रूप-स्वरूप में बदलाव अवश्य आता है, परन्तु इसकी मौलिकता में कोई फर्क नहीं पड़ता है। व्यक्ति जिस प्रकार के संस्कारों के अनुसार चेष्टाएँ, व्यवहार तथा कर्म करता है एक राष्ट्र की सामाजिक प्रवृत्तियों भी ठीक उसी प्रकार मूलभूत संस्कृति को अपनी परिधि का केन्द्र बनाकर गतिशील रहती है।

3.2.1 परिभाषा, अर्थ एवं स्वरूप

हिन्दी की महिला आत्मकथाओं में सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन करने से पहले संस्कृति का अर्थ जान लेना अनिवार्य है। संस्कृति शब्द का अर्थ- शुद्धि, सुधार, संस्कार है। संस्कृति को मनुष्य जीवन का प्राण माना जाता है। यह मनुष्य जीवन को सुसंस्कारित बनाकर विकास की ओर उन्मुख करती है। संस्कृति एक विशेष जीवन पद्धति का नाम है जो मनुष्य को चेतना सम्पन्न बनाती है। व्यक्ति को उसकी पाश्विकता, स्वार्थपरकता, संकीर्णता आदि विकारों से मुक्ति दिलाकर उसे परिष्कृत, सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। संस्कृति शब्द संस्कृत से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है - "अच्छी स्थिति, सुधरी हुई स्थिति आदि।

3.2.2 संस्कृति और संस्कार

इसके साथ साथ संस्कृति और संस्कारों पर भी प्रकाश डाला गया है। संस्कृति से तात्पर्य संस्कार सम्पन्नता शुद्धि अथवा व्यक्ति की सुधारी हुई स्थिति से है। जिस व्यक्ति का आचरण व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों रूप से शुद्ध हो उसी को संस्कृत कहा जा सकता है। संस्कार सम्पन्नता ही संस्कृति है, ये संस्कार शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। आधुनिक युग में इन संस्कारों का स्वरूप बदल रहा है क्योंकि माता-पिता और समाज की परम्परागत मान्यताओं में परिवर्तन आ रहे हैं

मूलतः वहीं संसकार देने वाले माने जाते हैं। संस्कारों में होने वाले बदलाव के कारण संस्कृति के रूप एवं स्वरूप में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। संस्कृति और संस्करा को अलग नहीं किया जा सकता है। संस्कार ही परिभाषाओं में परिणत होकर संस्कृति का रूप बन जाते हैं।

3.2.3 भारतीय संस्कृति की विशेषताएं

भारतीय संस्कृति को अत्यंत प्राचीन संस्कृति माना जाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्व जो आज से हजारों वर्ष पूर्व तक भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग थे, वे आज भी भारतीय संस्कृति में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है और भारतीय संस्कृति की इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रख कर हम प्राचीन भारत की परिस्थिति का आकलन कर सकते है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अध्यात्मिकता, ललित कला ज्ञान, विज्ञान, विभिन्न विधाएं, नीति, विधि-विधान, जीवन प्रणालियों और वे समस्त क्रियाएँ ओर कार्य है जो उसे विशिष्ट बनाते हैं और जिन्होंने भारतीयों के सामाजिक और राजनैतिक विचारों की धार्मिक और आर्थिक जीवन को साहित्यिक शिष्टाचार और नैतिकता में ढाला है।

खान-पान

महिला-लेखिकाओं ने भी अपने अपने क्षेत्र के खानपान को अपी आत्मकथाओं में चित्रित किया है। 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा की लेखिका कौसल्या बैंसंत्री महार जाति से संबंध रखती है। महार जाति के लोग जिस प्रकार का खानपान करते है उसका चित्रण लेखिका ने अपनी आत्मकथा में चित्रण किया है। इसी संदर्भ में लेखिका कौसल्या बैसंत्री लिखती है - "बडी बहन ने भात और रोटियाँ पकाई। पिताजी ने संवेरे ही मांस खरीद रखा था। ज्यादातर हमलोग गाय का मांस खाते थे। बस्ती के लोग भी ज्यादातर गाय का ही मांस खाते थे। यह मांस सस्ता होता था। हमारी बस्ती से थोडी ही दूरी पर कसाई खाना था। गड्डी गोदाम नामक जगह पर यह कसाई खाना था। मुस्लिम कसाई मांस बेचते थे। वहां हिन्दू खटीक बकरियों का मांस बेचते थे।

रहन-सहन

भारतीय समाज में परम्परा का महत्व अत्यधिक है। पारम्परिक पद्धति से विवाह, व्रत, त्यौहार स्त्रियों के जीवन के अतिभाज्य अंग होते है। भारतीय समाज में विववाह को तो एक महत्वपूर्ण संस्था माना जाता है। जो मनुष्य की कामभावना, वंश-वृद्धि एवं सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित संस्कार के साथ-साथ धार्मिक संस्कार भी माना जाता है। "विवाह संस्कार

भारतीय संस्कृति में ही नहीं संसार की सभी संस्कृतियों में एक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है।

रीति-रिवाज

धर्म का एक बहुत बड़ा हिस्सा विवाह और गृहस्थ संबंधी आदेशों-निर्देशों से भरा पडा है।" विविध रीति-रिवाजों और रस्मों का निर्वाह करना पड़ता है। समय परिवत्रन के साथ-साथ इन रीति-रिवाजों में भी कुछ परिवर्तन हुआ है। हिन्दी की महिला आत्मकथाओं ने अपने जीवन के इस महत्वपूर्ण संस्कार का वर्णन अपनी आत्मकथाओं में किया है।

वेश-भूषा

बाल्यावस्था से ही लडकियों को वेशभूषा के नाम लाज-लज्जा मं बांधकर रखा जाता रहा है। भारतीय संस्कृति में औरतों के लिए पहनावें का चुनाव कर रखा जो सिर से पैर तक ढंके रखे। घर के पुरूष चाहे अंगवस्त्र में घूमें परन्तु घर की औरतों को पारम्परिक पोशाक में रहना पड़ता है। अगर गलती से लडकी ने स्कर्ट पहन भी ली और वह स्कर्ट घुटने के उपर चला जाए तो सबको अखरने लगता है। उसे हर-बार टोका जाता है। तथा सलीके के कपडे पहनने की सलाह दी जाती है। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में इसका उदाहरण दृष्टव्य है - "स्कूल में हमें सलवार कमीज पहनना पडता। घर लौटकर मेरी अन्या सहेलियों भी स्कर्ट ब्लाउज या सलवार कमीज ही पहनती।

धार्मिक त्यौहार

इसके साथ साथ भारतीय संस्कृति की विशेषताओं जिनमें मुख्य रूप से खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा और धार्मिक त्यौहारों के बारे में बताया गया है। भारतीय संस्कृति में धार्मिक त्यौहारों और उत्सवों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अन्य देशों की तुलना में भारतीय संस्कृति में अधिक उत्सवप्रियता है। यह उत्सव धर्मिता परिवार और समाज को एक सूत्र में पिरोती है। यह उत्सव धार्मिक भावना के साथ जुड़े हुए है और साथ ही प्रकृति से भी संबंध रखते है - "जैसे दीवाली शरद ऋतु का उत्सव है तो होली वसंत ऋतु का त्यौहार है। व्यक्ति इन त्यौहारों के माध्यम से प्रकृति के प्रति अपनी कतज्ञता ही व्यक्त करता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय का शीर्षक **महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं में निरूपित समस्याएं** है। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है |

4.1 सामाजिक समस्याएं

इनमें सबसे पहले सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। जिसके अंतर्गत पितृसत्तात्मक समस्या, भ्रूण हत्या की समस्या, अनमले विवाह की समस्या, पुरूषों का स्त्रि पर अनैच्छिक अधिकार की समस्या, स्त्रियों को अधिकारों से वंचित रखाने की समस्या तथा अंत में स्त्री के दोयम दर्जे की समस्या को दिखाया गया है।

4.2 आर्थिक समस्याएं

इस अध्याय में आगे आर्थिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है जिसके अंतर्गत महिला बेरोजगारी की समस्या, पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं के प्रत्यक्ष रूप से किसी भी प्रकार का निर्णय न लेने की समस्या, स्त्री की आय पर पुरूष के नियंत्रण की समस्या, स्त्री की प्रत्येक वस्तु पर पुरूष की वर्चस्व की समस्यां तथा पारिवारिक सम्पति में सामाजिक रूप से स्त्री के हिस्से की समस्या को मुख्य रूप से दिखाया गया है। इसके साथ साथ यह भी दिखाया गया है कि जीवन में अर्थ की क्या भूमिका होती है।

4.3 धार्मिक समस्याएं

आज समाज में धर्म और जाति के नाम पर प्रेमी-प्रेमिकाओं की मौत के घाट उतार दिया जाता है। अपनी आत्मकथा आपहूदरी में रमणिका गुप्ता जाति के बारे में कहते हैं कि ‘‘जाटों की लड़की की क्षत्रियों के घर कैसे शादी का सकती है भला? बीबी जी तरफ से जहर खाने की धमकियाँ और दूसरों की मिसाले घर में दी जाने लगी थी। मंझला भैया परेशान! भाभी बजाय सहारा देने के ताने कसती।’’ आज समाज को आगे बढने की जरूरत है वहीं हमारा समाज जाति में अटका हुआ है। महिलाओं को धर्म के नाम पर समाज में शोषित किया जाता है। उसके कारण उन्हें काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। जब एक महिला किसी धार्मिक स्थल पर नहीं जाना चाहती तो समाज उसे घृणित दृष्टि से देखता है। इसी प्रकार की एक घटना मन्नू भण्डारी के साथ घटित होती है। जब वे उज्जैन में प्रेमचंद निर्देशक थी फिर भी उनका मन कभी महाकालेश्वर जाने का नहीं हुआ। वे कहती है कि ‘‘मै नास्तिक नहीं हूँ, गहरी आस्था है मेरी भगवान में। पर उसके बावजूद मन्दिरों या तीर्थ स्थान में जाने में मेंरी कोई रूचि नही न संस्कार। इसलिए बार-बार के आग्रह के बाद भी मैने जब महाकालेश्वर के मंदिर जाने में कोई उत्सुकता नहीं दिखाई तो उन लोगों को निराशा से

ज्यादा आश्चर्य हो रहा था।'' पितृसत्तात्मक व्यवस्था में धर्म स्त्री के संघर्ष के रास्ते में कभी बाधा तो कभी सहारा बना है। धर्म के नाम पर महिलाओं को गुलाम बनाने में पुरूषों का भी बहुत महत्वपूर्ण हाथ है।

4.4 राजनीतिक समस्याएं

समाज का निर्माण पुरूष और महिलाओं के संयोग से होता है। इसी कारण समाज में पुरूष और महिलाओं की जननी लगभग समान है परन्तु अपनी जनंसख्या के अनुसा महिलाओं को राजनीति में उतना प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। अगर हम सीधे तौर पर देखते है तो आधी आबादी का नेतृत्व करने वाली आज भी अपना उचित स्थान राजनीति में नहीं दिया गया है। पुरूष ने औरत को केवल एक वस्तु के रूप देखा है और वैसा ही उसका प्रयोग करने की सोचता है। यह पितृसत्तात्मक राजनीति का बहुत बड़ा सत्य है। इसी कारण स्त्री राजनैतिक दृष्टि से पुरूषों से पीछे रह गयी।

सक्रिय राजनीति की अगर बात की जाए तो 1952 से 2014 तक महिलाओं की स्थिति -

लोकसभा	कुल सीट	महिला उम्मीदवार	विजयी हुई महिलों का प्रतिशत
1952	489	22	4.4
1957	494	27	5.4
1962	494	34	6.7
1967	523	31	5.9
1971	521	22	4.2
1977	544	19	3.4
1980	544	28	5.1
1984	544	44	8.1
1989	521	28	5.3
1991	529	36	7.0
1996	541	40	7.4

1998	543	44	8.0
1999	543	48	8.8
2004	543	45	8.1
2009	543	59	10.9
2014	543	61	11.2

ये सभी आकड़े चुनाव आयोग की वेबसाईट पर उपलब्ध है। बहुत बार यह देखा गया है कि महिलाएं चनुाव तो जीत जाती है किन्तु उन्हें क्या, कैसे और कब करना है यह सब फैसले घर के पुरूष या महिला का पति ही लेता है।

4.5 साम्प्रदायिक समस्याएं

इस अध्याय में साम्प्रदायिक समस्याओं को उठाया गया है। इसमें यह दिखाया गया है कि दो सम्प्रदायों की आपसी लडाई में भी स्त्री को क्या क्या गवाना पडता है। सम्प्रदायिकता की समस्या धर्म तक सीमित नहीं रह गई है यह 20वीं शताब्दी में लैंगिक स्तर पर भी देखने को मिलने लगी। लैंगिक स्तर का अर्थ है पुरूष और स्त्री के स्तर पर। पुरूष अपने आप को स्त्री से ऊँचा तथा स्त्री भी अपने को पुरूष से कम नहीं समझ रही, इसी कारण लैंगिक स्तर पर भी साम्प्रदायिक समस्या का जन्म हो रहा है। किन्तु लैंगिक स्तर पर साम्प्रदायिकता का उत्पन्न होना भी पुरूष की देन है। जब भी कहीं पर दंगे होते है तो पर जानमाल के नुकसान के अतिरिक्त जो कार्य होता है वह स्त्री अस्मिता को लूटने का। पुरूषवादी समाज ने स्त्री को अपने मनोरंजन का एक खिलौना समझ रखा है। इसके विपरीत स्त्री किसी तरह से अपनी अस्मिता को बचाने का प्रयास करती है। किसी भी स्थान पर दुर्घटना चाहे कोई भी हो उसका सबसे ज्यादा नुकसान महिलाओं को ही उठाना पड़ता है।

4.6 सांस्कृतिक समस्याएं

इस अध्याय में अंत में सांस्कृतिक समस्याओं को भी उठाया गया है। जिसमें मानवीय मूल्यों का विघटन, नैतिकता का पतन, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव और भौतिकता का प्रभाव दिखाया गया है। मनुष्य का रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, आचार-विचार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव आदि सभी संस्कृति की परीधि में आते है। संस्कृति समय के साथ परिवर्तित तो होती है। जो अपने में कुछ बदलाव करती है। ये बदलाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों

प्रकार के होते है। हमारे समाज में ऐसी बहुत सी प्रथाएं है जो हमारी संस्कृति को बदनाम करती है। इनमें एक दहेज प्रथा है। दहेज प्रथा पर 1 जुलाई 1961 पर कानूनी रूप से भी प्रतिबंध लगा दिया है। किन्तु फिर भी आज भी बहुत बड़े पैमाने पर इसका चलन समाज में है। मैत्रेयी पुष्पा अपने विवाह में लड़के वालों के दहेज मांगने का बहाना बताती है, लडके वाले अपनी प्रतिष्ठा का सवाल बताकर दहेज मांगते है। महिला आत्मकथकारों ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्री की घुटन, अतृप्ति तथा नैतिकता के बहुत से स्तरों को समाज के समाने लाने का काम किया है। महिला आत्मकथाकारों अपने व्यक्ति जीवन में समाज में जो महसूस किया तथा जो देखा उस सब का वर्णन अपनी आत्मकथाओं में किया है। इन आत्मकथाओं की आत्मकथाकार स्वयं तथा उनके आस-पास के लोग नैतिकता व अनैतिकता की धारणा में विचलित दिखायी पड़ रहे है। इन सबके जीवन मूल्यों में समाज की नैतिकता व संस्कृति के मापदण्डों के प्रति उदासीनता झलकती है। समाज में महिलाओं के प्रति पुरूष की सोच के प्रति महिला लेखिकाओं का विद्रोही स्वर हमें सुनायी पड़ता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का अंतिम व पंचम अध्याय **महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं की भाषा एवं शिल्प** है । जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

5.1 भाषा का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

भाषा किसे कहते हैं, इस का क्या स्वरूप है और भाषा का प्रारम्भ कैसे हुआ, यह एक जटिल एवं विवादास्पद प्रश्न है। सृष्टि के आदिम युग में मनुष्य ने जब नेत्रोन्मीलन किया होगा, तो बाह्य प्राकृतिक परिवेश के सम्पर्क में आने पर उसके मन में अनेक प्रतिक्रियाएँ एवं संवेदनाएँ जागृत हुई होंगी। अनेक अस्पष्ट तथा सामान्य अर्थ में निरर्थक ध्वनियों के माध्यम से उसने (मानव) अपनी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया होगा। उसको भाषा नहीं कहा जा सकता। समाज संवेदनाओं और भावों को व्यक्त करने के लिए आदिम मानव ने जिन साधनों को अपनाया होगा, वे सभी साधन स्थूल रूप में भाषा कहे जा सकते हैं।

5.2 भाषा शैली (आत्मकथात्मक)

इसके पश्चात् आत्मकथाओं में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख भाषा शैली के बारे में बताया गया है। अपने भावों को अभिव्यक्त करने की अपनी एक शैली होती है। शैली से तात्पर्य अपनी बात को कहने का ढंग। शैली शब्द का अंग्रेजी भाषा में अर्थ है - स्टाइल। शैली शब्द के अन्य

अर्थ-रीति, काम करने का ढंग, तरीका, नियम आदि। संस्कृत काव्य शास्त्र में 'रीति-सम्प्रदाय' के माध्यम में शैली शब्द भाषा।एक ही घटना या दृश्य को देखकर उसकी व्याख्या करने की शैली भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न होगी, यही भिन्नता कथा में शुष्कता या सरसता ला सकती है। साहित्य में प्रत्येक विधा के अभिव्यक्तिकरण की अपनी एक शैली होती है। विशेषरूप से आत्मकथा की विशिष्ट शैली है। आत्मकथा का प्रारम्भ पद्य शैली में हुआ था। बनारसीदास जैन ने अपनी आत्मकथा को पद्य में लिखा था। आधुनिक काल में इस विधा की गद्य शैली में लिखा जा रहा है।

5.3 शिल्प का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

इसके आगे शिल्प का अर्थ एवं स्वरूप का वर्णन किया गया है। भारतीय जीवन दर्शन में अध्यात्मपरक तत्वों का सन्निवेश होने के कारण यहां के निवासियों की प्रवृति सनातन काल से ही कुछ ऐसी रही है कि किसी भी श्रेष्ठ रचना को गौरव प्रदान करने के निमित उसके उद्भव का संबंध सहज ही किसी न किसी दिव्य शक्ति अथवा दिव्य पुरूष के साथ स्थापित किया जाता रहा है। परिणामतः उसके आरंभ और विकास-विषयक वास्तविकता का पता लगाना दुरूह कार्य हो जाता है। आज का बुद्धिवादी आलोचक भी कदाचित इसीलिए इस प्रकार की आस्थओं का अभ्यासी न होने के कारण उनकी एकांत उपेक्षा कर डालता है। यह प्रवृति अपने आप में अतिवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं। शिल्प का जन्म तो उस रूप से ही हो गया था, जब मनुष्य के हृदय में निर्माण की भावना का जागरण और उसके पश्चात् वस्तु-विशेष के रूप में उस भावना की अभिव्यक्ति हुई। 'शिल्प' शब्द 'शील' धातु में 'प' प्रत्यय जोड़ने से बना है। 'शील' धातु का अर्थ है - ध्यान करना, पूजन करना, अर्चन करना, अभ्यास करना। 'प' का प्रयोग प्रायः पीने वाले के अर्थ में होता है। इस दृष्टि से शिल्प का अर्थ ध्यान पा अभ्यास को पीने वाला होगा। शिल्प की परिभाषा एवं स्वरूप - प्रत्येक रचना भाषा के माध्यम से विशेष रचनात्मक रूप लेकर अविष्कृत होती है। प्रत्येक साहित्यिक रचना के रचनात्मक रूप का संबंध शिल्प से है। शिल्प किसी वस्तु के रचना विधान से संबद्ध होता है। कवि का अनुभव सामान्य नहीं होता, बल्कि विशिष्ट होता है। वह भाषा के विभिन्न आयामों जैसे बिम्ब, प्रतीक, उपमान आदि को तलाशता है जिन्हें शिल्प विधान के अंतर्गत रखा जाता है।

5.4 लाक्षणिक भाषा का प्रयोग: मुहावरों का प्रयोग

इसी अध्याय में लाक्षणिक भाषा किस प्रकार लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में उसे बारे में बताया गया है। लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथा में भाषा की सामर्थ्य को बढाने वाले उपकरणों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। जिस कारण यह पात्रों के कथन से मेल खाते हैं। किसी भी भाषा में मुहावरों का प्रयोग भाषा को सुन्दर, प्रभावशाली, संक्षिप्त तथा सरल बनाने के लिए किया जाता है। मुहावरे का प्रयोग वाक्य के प्रसंग में ही होता है, अलग नहीं। मुहावरा अपना असली रूप कभी नहीं बदलता। कार्टून चरित्रों की तरह से सदैव एक से रहते हैं। अर्थात् उसे पर्यायवाची शब्द में अनुदित नहीं किया जा सकता है। लेखिकाओं ने मुहावरों का प्रयोग पात्रों एवं स्थिति के अनुकूल किया है। जिस कारण वह पात्रों के कथन से मेल खाते हैं, उनकी स्थिति के अनुकूल ही मुहावरों का प्रयोग किया जा रहा है। मुहावरों के प्रयोग से वाक्य का भाव सौन्दर्य और अर्थ-गंभीरता बढ़ जाती है। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी आत्मकथाओं में मुहावरों का बहुलता से प्रयोग किया है।

5.5 भाषा में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग

लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा क्षेत्रीय भाषा की बहुलता का प्रयोग किया है, जिस कारण उनके जीवन की सम्पूर्ण स्थितियाँ जीवन्त हो उठती है। आत्मकथा को छोड़कर साहित्य की किसी भी विधा में लेखक अपनी इच्छा से पात्रों के साथ-साथ भाषा को भी गढ़ सकता है, लेकिन आत्मकथा विधा में आत्मकथाकार की क्षेत्रीय भाषा अनायास ही प्रस्फुटित हो उठती है। मैत्रेयी पुष्पा पहली लेखिका हैं, जिनकी पृष्ठभूमि ग्रामीण रही। मैत्रेयी ने ग्रामीण परिवेश को अपनी आत्मकथाओं का आधार बनाया। उनकी आत्मकथाओं में एक विलक्षण खुलापन और बेबाक सहजता समाहित है। लेखिका ने अपनी आत्मकथाओं में बुन्देलखण्ड की बोलियों का प्रयोग पूरी उदारता के साथ किया है। काफी समय से दिल्ली में रहने के बाद भी बुंदेलखण्ड उनके रोम-रोम में समाया है।

5.6 बिम्ब योजना

भाषा की अभिव्यक्ति में बिम्ब की बहुत अधिक आवश्यकता है। अभिव्यक्ति के माध्यमों में जहां भाषा की अहम् भूमिका है, वहीं बिम्ब भाषा को जीवंत और सम्प्रेषण के लिए अति आवश्यक है। बिम्ब केवल चित्र नहीं होते अपितु कोरी चित्रात्मकता से बढ़कर संवेदनात्मक चित्र होते हैं। अर्थात् किसी भी शाब्दिक रूप से ऐसा वर्णन करना जिसमे वह प्रत्यक्ष प्रतीत हो, बिम्ब कहलाता है।

बिम्ब शब्द को अंग्रेजी भाषा में इमेज कहा जाता है। बिम्ब का अर्थ है - चित्र, कल्पना चित्र, शाब्दिक चित्र खींचना। अर्थात् जब किसी घटना का वर्णन इस प्रकार किया जाए कि सारा दृश्य आंखों के सामने प्रत्यक्ष अनुभूत हो।

उद्भव के आधार पर बिम्ब दो प्रकार के होते हैं। स्मृति जन्य तथा कल्पित या स्वरचित। स्मृति जन्य बिम्ब में पूर्वदृष्ट वस्तुओं अथवा दृश्यों की स्मृति सम्बन्धी पूर्व संचित अवशेष होते हैं जो समय-समयपर जाग्रत होते रहते है। उदाहरण - अपने किसी अभिन्न मित्र की याद आते ही दृश्य बिम्ब के रूप में उसकी छवि, श्रवण बिम्ब के रूप् में उसकी आवाज आदि की प्रतिमाएं हमारे मन में तुरन्त जाग्रत हो उठती है। कतिपय बिम्ब स्वरचित होते हैं। यह कल्पना के संयोजन से संयोजित होकर प्रतिमा निर्माण में सहायक होते हैं। कल्पित बिम्ब की व्याख्या अपने एक परिचित व्यक्ति के माध्यम से करने का प्रयास करती है। हमारे एक परिचित मित्र के विवाह के सोलह वर्ष बाद भी कोई संतान वहीं है। मित्र के पिता ने कल्पित रूप में अपनी पौती का बिम्ब चित्र अपने मन में बना लिया है तथा काल्पनिक पौती का नामकरण भी कर दिया। अपनी आत्मकथाओं में लेखिकाओं ने ऐसे जीवन्त बिम्बों का प्रयोग हुआ है। जिससे समस्त घटना को पाठक अपने आस पास घटित होते हुए अनुभव करता है।

5.7 प्रतीक योजना

इस अध्याय के अंत में प्रतीक योजना के बारे में बताया गया है। प्रतीक शब्द का अंग्रेजी अर्थ 'सिम्बल' है। किसी शब्द, चिह्न, ध्वनि, संकेत अथवा वस्तु द्वारा किसी अप्रस्तुत वस्तु का बोध करना प्रतीक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रतीक एस शब्द चिह्न है जिसमें किसी अदृश्य वस्तु का स्पष्ट भाव का बोध हो जाता है। उदाहरण - सुन्दरता के लिए चांद का उपमान दिया जाये। चांद प्रतीक को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। चांद के माध्यम से अदृश्य वस्तु की सुन्दरता का अनुमान लगाया जा सकता है। विवाहिता स्त्री द्वारा प्रयोग किये जाने वाले आभूषण उदाहरण - बिछुएँ, मंगलसूत्र उसके सुहाग का प्रतीक हैं। गले में लटका क्रास व्यक्ति के अस्तिक ईसाई होने का प्रतीक है। राष्ट्र के सूचक चिह्न उदाहरण - राष्ट्रीय पक्षी, राष्ट्रीय पुष्प, राष्ट्रीय पशु, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्रगीत आदि सब राष्ट्र के प्रतीक हैं जो अगोचर या अप्रस्तुत को प्रत्यक्ष करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य अपने सामाजिक धार्मिक तथा व्यवहारिक जीवन में प्रतीकों का बहुत ही शक्तिशाली माध्यम है। मनोवैज्ञानिक प्रतीकों के माध्यम से ही अचेतन मन की परतों को खोलने का प्रयास करते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में पंचम अध्याय के बाद उपसंहार दिया गया है इसमें सम्पूर्ण शोध प्रबंध को सार रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद संदर्भ ग्रंथ सूची को स्थान दिया गया है।

शोधनिर्देशक	शोधार्थी
डॉ.एन.एस. परमार	कल्पना